संगीत कला की नवीन प्रवृत्तियों का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

डॉ0 नीता दिसावाल

तत्कालीन समाज में संस्कृति, सांस्कृतिक शिक्षा, संगीत की दशा, संगीत का योगदान, समाज में संगीत का स्थान एवं कलाकारों का स्थान, सामाजिक शिक्षा एवं संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे व अस्तित्वहीन हैं। विचार, ज्ञान, अनुभव, मर्म आदि सभी क्षेत्रों में जब तक हमारा सृजन क्रम चलता है तब तक हम जीवित हैं। ''जीवन पूर्ण हो गया'' का अर्थ उसका समाप्त हो जाना है। अतः संस्कृति को शाश्वत बनाये रखने हेतु उसकी शिक्षा व संगीत में पारस्परिक समन्वय आवश्यक है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से समुचित विश्लेषण के लिए भी सर्वथा मान्य है कि संगीत प्रेमी समाज जिस वृहत्तर शेष समाज की परिधि में एक उपपरिधि है। उसके समाजशास्त्रीय परिवेक्षण में वस्तुनिष्ठ ही रहना है। शेष समाज की कला संस्कृति, साहित्य विषयक अपेक्षाओं की परिवर्तन का कालानुक्रमिक प्रभाव पड़ता रहा है। अतः संगीत प्रेमी समाज की अंतर्वर्ती वस्तु–स्थिति के बदलाव से भी संगीत जुड़ रहा है। कलाओं की समाजशास्त्रीय समीक्षा में मान्यता है कि कला को जीवन का प्रतिबिम्ब कहा जाता है।